Paper III : Research Synopsis

शोध प्रारुप

Supervise by
Dr. V.P. Agarwal
Reserch Supervisor

Submitted by
Monu Singh Gurjar
Research Scholar

समावेशी शिक्षा के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के संस्था प्रधानों, अध्यापकों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन

A Study of Attitude of Head of Insitutions, Teacher and Parent of Secondary Schools towards Inclusive Education

A Research Synopsis

शोध प्रारूप

Submitted

By

Monu Singh Gurjar

Research Scholar

Under Supervision of

Dr. V.P. Agarwal

Associate Professor (Retd.)

Regional Institute of Education (NCERT), Ajmer

MAHARSHI DAYANAND SARASWATI UNIVERSITY, AJMER

2016

महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर

1.0 Name of Research Scholar -

(In English) - **MONU SINGH GURJAR**

(In Hindi) - **मोनू सिंह गुर्जर**

2.0 Title of Research work **(शोध शीर्षक)**

(In English) - **A Study of Attitude of Head of institutions Teacher and Parent of Secondary Schools towards Inclusive Education**

(In Hindi) - **समावेशी शिक्षा के प्रति माध्यमिक विद्यालयों के संस्था प्रधानों, अध्यापकों एवं अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन**

3.0 Location

A. Name of the Institute - **Regional Institute of Education (NCERT), Ajmer**
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, (एनसीईआरटी) अजमेर

B. Geographical area of Investigation, if any.

4.0 Introduction Importance of Proposed Investigation, Objecties

4.1 **प्रस्तावना**

मनुष्यएक सामाजिक व विवेकशील प्राणी है। उसका प्रत्येक कार्य उसके ज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक पक्ष से प्रभावित होता है। प्रत्येक राष्ट्रव समाज का भौतिक व आध्यात्मिक विकास शिक्षा पर निर्भर करता है। शिक्षा प्राप्त करने का सभी को मौलिक व प्राकृतिक अधिकार है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 (नीति निर्देशक तत्व) में प्रावधान किया गया है कि 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों की अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास चल रहे हैं, परंतु आज प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण के लक्ष्य की प्राप्ति ही आंशिक रूप से हो पाई है। इसके लिये अनेक कारण उत्तरदायी है, जिनमें एक बहुत ही महत्वपूर्ण कारण है, विकलांग बालको की शिक्षा के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का अभाव है।विश्व जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग विकलांग व्यक्तियों का है। विश्व में कुल विकलांगो का लगभग आठवॉ हिस्सा भारत में है।इस प्रकार विकलांग वर्ग का प्रभाव आर्थिक व सामाजिक रूप से समाज पर पड़ता है। दिव्यांग वर्ग भी समाज का अभिन्न वर्ग है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि दिव्यांग बच्चों को उन्नति के पर्याप्त अवसर दिये जाए ताकि समाज व राष्ट्र की उन्नति में उनका भी सहयोग प्राप्त हो सके।

भारतीय शिक्षा आयोग (1964–66) के अनुसार विकलांग बालक को दी जाने वाली शिक्षा का प्रमुख कार्य है–उसे सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण से सामंजस्य करने के लिए तैयार करना, जिसका निर्माण सामान्य व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए हुआ है। अतः यह आवश्यक है कि विकलांग बालकों की शिक्षा सामान्य शिक्षा प्रणाली का अभिन्न अंग हो।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के पूरक कार्यक्रम के रूप में सन् 1975 में समाज कल्याण विभाग, भारत सरकार ने विकलांग बच्चों की समेकित शिक्षा योजना (आई

ई डी एस) प्रारंभ की। इस योजना के अंतर्गत सामान्य विद्यालय में पढने वाले विकलांग छात्रों को छात्रवृत्ति व अतिरिक्त सुविधा दी गई तथा उनकी शिक्षा के लिए अतिरिक्त भत्ते का प्रावधान किया गया।

यदि विकलांग बच्चे सामान्य समुदाय के साथ रहते हैं तो विशिष्ट विद्यालय में शिक्षा के लिए उन्हें पृथक नहीं करना चाहिए, बल्कि सामान्य बच्चों के साथ सामान्य विद्यालय मे पढ़ाया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में समानता के लिए शिक्षा नामक अध्याय में विकलांग बच्चों और सामान्य बच्चों की शिक्षा के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

भारत में विकलांगों की शिक्षा का इतिहास

भारत में विकलांगता के क्षेत्र में सर्वप्रथम दृष्टिबाधिता पर ध्यान दिया गया। ब्रिटिश शासन ने 1942 में अंधत्व के कारण निवारण व कल्याण हेतु एक समिति का गठन किया। इस समिति ने शिक्षा मंत्रालय में अंधत्व पर एक इकाई को स्थापित करने की सिफारिश की। यह इकाई 1947 में बनाई गई और कुछ समय बाद ही अन्य प्रकार की विकलांगता वाले बच्चों की शिक्षा के कार्यक्रम को इससे जोड़ा गया। उस समय शासन ने चार प्रकार की विकलांगता पर ही विचार किया–दृष्टिबाधिता, श्रवणबाधिता, मानसिक पिछड़ापन और गत्यात्मक असमर्थतता। अधिगम विकलांगता को औपचारिक रूप से विकलांगता की मान्यता नहीं मिली।

एक समय था जब फ्रांस व रोम में विकलांग बच्चों को जीवित नहीं रखा जाता था। जिसका कारण था कि युद्ध करना उस समय लोगों का प्रमुख व्यवसाय था और विकलांग व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं थे। विकलांगता के प्रति इस प्रकार का उपयोगिता संबंधी दृष्टिकोण आगे भी समाज में व्याप्त रहा।

भारत इस संबंध में एक अपवाद रहा। अशोक के राज्य काल में वृद्ध और विकलांग व्यक्तियों की देखभाल हेतु एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया था।

विकलांग बच्चों का पालन पोषण तो होता रहा लेकिन उन्हें शिक्षा प्राप्त करने या काम करने के उपयुक्त नहीं समझा गया।

समेकित शिक्षा का प्रारंभ

विशेष शिक्षा के समर्थकों का पक्का विश्वास रहा है कि विकलांग बच्चे और सामान्य बच्चे की शिक्षा साथ–साथ नहीं हो सकती है। अतः 19वीं सदी के अंत तक विशेष विद्यालयों की परंपरा चालू रही। बीसवीं सदी के प्रारंभ में अमेरिका में समेकित शिक्षा पर प्रयोग प्रारंभ हुए। ब्रिटेन में 10–15 वर्ष बाद इस पर कार्य आरंभ हुआ, हालांकि 20वीं सदी के बाद के समय में यूनाइटेड किंगडम द्वारा विशेष विद्यालयों का समर्थन जारी रहा। 20वीं सदी के अंतिम 2–3 दशकों में विकलांग बच्चों हेतु समेकित शिक्षा कार्यक्रम का विकास हुआ।

समावेश का शाब्दिक अर्थ है – सम्मिलित करना (To take in), एक भाग मानना (To consider as a part), या साथ लेना (To embrace)। समावेश का अर्थ सदस्यता से है तथा जिसका संबंध समुदाय से है।

शिक्षा के संबंध में समावेश का अर्थ विद्यालय की ऐसी पुनःसंरचना से हैं जिसमें विद्यालय सभी समुदायों का एक केन्द्र हो और जहां सभी प्रकार के बाल शिक्षा ग्रहण कर सके। एक ऐसा विद्यालय जहां शिक्षक, शिक्षार्थी को सीखने के विभिन्न अवसर प्रदान करें। परन्तु समावेशी शिक्षक एवं समावेशी विद्यालय बनाने का कोई प्रमापीकृत प्रावधान नहीं है। समावेशी शिक्षा के मूल में अच्छा शिक्षण अभ्यास, शिक्षक–शिक्षार्थी के मध्य अच्छे संबंध, कक्षा के सभी बालकों की शिक्षा में गुणात्मक सुधार तथा बालकों का विभिन्न प्रकार से सर्वागीण विकास में सहायता करना है। समावेशी शिक्षा दर्शन में उपर्युक्त गुणों का समावेश है। कक्षा में सभी बालकों का प्रदर्शन तभी अच्छा हो सकता है जब कक्षा समायोजन इस तरह किया गया हो कि सभी प्रकार के बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखा गया हो।

समावेशी शिक्षा की अवधारणा

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो इतिहास इस बात का गवाह है कि विकलांगता समाज का एक हिस्सा तो हो गई थी, परंतु इसके साथ नीतिगत ढंग से कैसे निपटा जाये अथवा विकलांगो का संवर्धन और संभव विकास कैसे किया जाये, इसके लिए कोई विशेष योजना मुख्य धारा में नहीं थी। जैसे–जैसे समाज में बौद्धिकता का विकास हुआ, लोग बालकों एवं किशोरो की विशिष्ट आवश्यकताओं को लेकर संवेदनशील हुए इस संवेदनशीलता के कारण ऐसे बालकों और किशोरा का पृथक्कीकरण होता गया।अब, जबकि हम समावेशी शिक्षा की बात कर रहे है तो हमारे पास पर्याप्त कारण है कि समावेश के बारे में सोचे।समावेशी शिक्षा की अवधारण का मूल स्त्रोत बालकों को शिक्षा के समान अवसर है। बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का अर्थ शिक्षा से संबंधित समान अवसर प्रदान करना नहीं है। अपितु इस अवधारणा को ध्यान में रखते हुए व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर आवश्यकतानुसार शिक्षा के अवसर प्रदान करना है।

हमारी यह जिम्मेदारी है कि हम यह समझें कि प्रत्येक बालक की आवश्यकताएं अलग–अलग हैं । समाज में यह धारणा है कि कुछ बालक सामान्य तथा कुछ विशिष्ट होते हैं। हमें इस बात की आवश्यकता है कि हम उन्हें किसी भी प्रकार से प्रयास करके उनकी विकलांगता को दूर करने का प्रयास करें अथवा ऐसा प्रयास करे कि वे सामान्य बालकों के समान शिक्षा के मूल्य अर्जित करने में सक्षम हो। साथ ही यह भी प्रयास करें कि वे समाज में शामिल सामान्य बालकों की तरह समाज मे अपना स्थान बना सकें। एक बालक को जहां समाज में सम्मिलित रहने का अधिकार रहता है वहीं उसे स्वेच्छा से समाज से पृथक होने का भी अधिकार होता है। इस प्रकार समाज में सम्मिलित होने का विकलांग बालक को भी अधिकार हैं, जो कि उसे प्राप्त करना चाहिये।समावेशी शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षकों के सामने यह चुनौती होती है कि वह विकलांग बालकों को इस प्रकार सहयोग दे कि उनका सामाजिक और शैक्षिक दोनों प्रकार से समावेश हो सके। केवल शिक्षा व विशेष शिक्षक के द्वारा ही अर्थपूर्ण समावेश संभव नहीं है यह तब सार्थक होगा जब हमारे प्रयास तात्कालिक हों। सार्थक समावेश के लिए हमें विद्यालय मे ऐसे प्रशासकों,

शिक्षकों और अभिभावकों की आवश्यकता है जो भिन्नता के मूल्यों को समझते हों। साथ ही समस्यात्मक बालकों को परंपरागत तौर पर अलग रखने पर भी प्रश्न उठा सके।

सरकारी कार्यक्रम सर्वशिक्षा अभियान एवं राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के तहत बालकों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा बिनाकिसी भेदभाव के प्रदान करने का प्रावधानरखा गया है। अनुभव और शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि विशिष्ट एवं पृथक्कीकृतविद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा बालक के सर्वागीण विकास में सहायक नहीं होती।

4.2 शोध अनुसंधान का महत्त्व –

भारत एक प्रजातांत्रिक देश है। प्रजातांत्रिक देश की विचारधारा के अनुसार सभी बालकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अधिकार है चाहे वह प्रतिभाशाली हो अथवा बाधित हों। किसी भी रूप में जैसे– शारीरिक बाधित, मानसिक मंदित, दृष्टि बाधित, श्रवण बाधित, शारीरिक अंग के अस्थि दोषों से बाधित हो, सभी को शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार है। सभी प्रकार के बालकों को स्कूल शिक्षा प्राप्त करने व विकास का पूर्ण अधिकार है।यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि सभी व्यक्ति शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं शैक्षिक रूप से किसी न किसी सीमा तक एक–दूसरे से भिन्न होते है। कभी–कभी ये भिन्नतायें इस सीमा तक पायी जाती है कि इन बालकों को विशिष्ट वर्गो में रखकर शिक्षा देना आवश्यक हो जाता है। सरकार, समाज तथा शिक्षा संस्थाओं का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इन बालकों को पहचान कर उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा एवं निर्देशन प्रदान करें।

समावेशी शिक्षा इसलिए महत्वपूर्ण है क्यों कि इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार से निर्योग्य (दिव्यांग) बालक भी एक सामान्य विद्यालय की सामान्य कक्षा में सामान्य बालकों के साथ शिक्षा ग्रहण कर पाते है।परंतु समस्या यह है किविकलांग (दिव्यांग) बच्चे सामान्य विद्यालय की सामान्य कक्षाओं में लाभ नहीं उठा पा रहे है। इसका मुख्य कारण शिक्षकों और अभिभावकों के समावेशी शिक्षा के प्रति उचित दृष्टिकोण की कमी है। कहीं न कहीं समुदाय में समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता का

अभाव है। जब तक समावेशी शिक्षा के मुख्य घटक विद्यालय, परिवार और समुदाय इसके प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण नहीं अपनाते तब तक समावेशी शिक्षा का पूर्ण क्रियान्वयन संभव नहीं है।

4.3 शोध उद्देश्य –

प्रस्तुत शोधकार्य के निम्न प्रमुख उद्देश्य होगें।

1. समावेशी शिक्षा की आवश्यकता और उसके प्रति संस्था प्रधानों की अभिवृत्ति का अध्ययन करना।
2. समावेशी शिक्षा के क्रियान्वयन में संस्था प्रधानों द्वारा किए गये प्रयासों का अध्ययन करना।
3. समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी विद्यालयों एवं निजी विद्यालयों के संस्था प्रधानों की अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
4. समावेशी शिक्षा के प्रति बालक विद्यालयों के अध्यापक व बालिका विद्यालयों की अध्यापिकाओं की अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।
5. समावेशी शिक्षा के प्रति बालक विद्यालयों के अभिभावक व बालिका विद्यालयों के अभिभावक की अभिवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

5.0 Review (Work Already done on the subject of proposed Research Study)

सम्बन्धित शोध साहित्य का पुनरावलोकन –

इलिच (1971)ने अध्ययन के पश्चात् कहा, ''एक बड़ी भ्रांति जिस पर विद्यालय व्यवस्था आधारित है, यह है कि अधिकांश अधिगम अध्यापन का परिणाम होता है। यह सही है कि अध्यापन के कुछ विशेष दशाओं में कुछ विशेष प्रकार के अधिगम में योगदान दे सकता है पर अधिकांश लोग अपना अधिकांश ज्ञान विद्यालयों के बाहर

प्राप्त करते हैं तथा विद्यालय मे उसी सीमा तक प्राप्त करते है जहां तक कुछ धनी देशों के विद्यालय उनके जीवन को बंद रखने का स्थान बन गया है।

फ्रेरे (1978)ने विद्यालय को ''ज्ञान का बाजार'' कहा था– ''ऐसे विद्यालय शारीरिक और मानसिक श्रम, व्यवहार और सिद्धांत, अध्यापन और अधिगम के बीच तथा आज मौजूद ज्ञान और नये ज्ञान के सृजन के बीच विभाजन (पैदा करते है), (जब) एक ''ज्ञान का बाजार'' अधिगम के एक लोकतांत्रिक केन्द्र रूपी विद्यालय से विस्थापित हो जाता है, तो करने वाला निरंकुश अध्यापक गायब हो जाता है चुनिंदा ढंग से ज्ञान का संप्रेषण करता हो। उसकी जगह आ जाते हैं सक्रिय अध्यापक और शिक्षार्थी – ऐसे अध्यापक जो अध्यापन करते हुए कुछ सीखते हैं और ऐसे छात्र जो अधिगम के दौरान कुछ सीखते है।''

टामलिंसन (1982)का ख्याल है कि और अधिक व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिए कुशल श्रमशक्ति की आवश्यकता, श्रम्बल पर आवश्यक अनुशासन लागू करने तथा संतोष को नियंत्रित करने की आवश्यकता ने विद्यालय नाम की संस्था को जन्म दिया। इसके पीछ औद्योगिक वर्ग के मार्गदर्शक सिद्धांत और प्रेरणा भी थी। इसलिए ऐसे विद्यालयों में लागू की गई पाठ्य चर्चाएं (क्यूरिक्यूला) प्रभुत्वशाली और शक्तिशाली लोगों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए बनी थी। उनकी राय में इसी से इस बात की व्याख्या भी होती है कि इंग्लैड और वेल्स में निर्योग्य (डिसएबल्ड) लोगों की शिक्षा को क्यों उपेक्षित किया गया तथा आगे चलकर उन्हें रोजगार योग्य बनाने के लिए विशेष विद्यालय क्यों कायम किए गए। लेखको का विश्वास यह है कि औद्योगिक युग में कारखाने की तर्ज पर विद्यालय के गठन ने आधुनिक विद्यालय व्यवस्था में इसी से मिलते जुलते लोकाचार और शब्दसमूहों का समावेश किया। आज के विद्यालयों में छात्रों को जीवन के लिए तैयार किया जाता है तथा कुछ विद्यालयों के 'उत्पाद' दूसरे विद्यालयों से बेहतर होते है। विद्यालयों से 'छात्रों' के 'स्तर' को बनाए रखने की आशा की जाती है ताकि उनकी 'कारगुजारी' ऊँची बनी रहे।

टामलिंसन (1982) सायमंस (1983) तथा स्लाटर (1993)ने औद्योगिक काल के 200 वर्षों से कम समय में एक जन–शिक्षा व्यवस्था के रूप में विद्यालय नाम की संस्था के उद्‌गम का हवाला दिया है।

लाकहीड और बेर्सपूर (1991)ने उन विकासशील देशों कें संदर्भ में 'प्रक्रियाओं के एक समूह' की पहचान की है जहां भौतिक आगम आसानी से उपलब्ध है। ये हैं–विद्यालय का एक सुव्यवस्थित वातावरण, सुस्पष्ट, लक्ष्य और सभी प्रत्याशाएं, समुदाय की भावना तथा मजबूत शैक्षिक नेतृत्व।' इन पाश्चात्य माडलों में से किसी भी शिक्षार्थी (लर्नर) का विवरण, उसकी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि, विद्यालयों में चयन और प्रवेश की विधि, ट्‌यूशन के रूप में विद्यालय से बाहर की मदद आदि का ध्यान नहीं रखा जाता? संभवतः इसलिए कि पश्चिम में इन बातों को लेकर विद्यालयों में अंतर नहीं पाये जाते या वे वहां की व्यवस्था में मूल मुद्‌दे है ही नहीं। इसलिए भारतीय विद्यालयों की प्रभाविता का अध्ययन करने के लिए विद्यालयों की प्रभावती बनाने में सभी तत्वों की एक सार्थक भूमिका होगी तथा किसीभी तुलना में उनको नियंतित्र करना और ध्यान में रखना होगा, चाहे वह निजी और सरकारी के बीच हो या एक ही व्यवस्था के अंदर विभिन्न विद्यालयसमूहों के बीच।

विकलांग बच्चों की शिक्षा और समावेशी शिक्षा को प्रभावी विद्यालयों संबंधी किसी भी अध्ययन में अभी तक हाशियाई दर्जा ही मिला है।

स्कृटिक (1991)ने इसके विश्लेषण का प्रयास किया है – कक्षा के स्तर पर विद्यालयों में अनुकूलन की क्षमाता नहीं है, विद्यालय प्रबंध के प्रति अभिसारी (कनवर्जेन्ट) सोच और बुद्धिसंगत–तकनीकी दृष्टिकोण को जन्म देने वाली पेशेवरी (प्रोफेशनलिज्म) बच्चों के कार्य क्रमबद्ध अनुदेशों के अनुसार चलने या फिर कक्षा से बाहर निकल जाने के लिए मजबूर करती है, ... औपचारिक बना दी गई संरचना और मानकीकृत पाठ्‌यचर्चा पेशेवर सोच और अध्यापकों के विवेक को घटाकर बच्चों की जरूरत के अनुसार कार्यक्रमों को वैयक्तिक बनाने तक सीमित कर देती है।

स्वरूप एवम् मेहता (1991) ने 8–11 वर्ष की आयु के अधिगम असमर्थता वाले बालकों के लिए निदानात्मक परीक्षणों की एक श्रृंखला बनाई। ये निदानात्मक परीक्षण The Behavioral Checklist for screening the Learning Disabled (BCSLD), The Diagnostic Test of learning (DTLD) औरSwarup Mehta Test of Thinking Strategies (TTS) है। इनकों शिक्षक सामान्य कक्षा पर प्रशासित कर सकता है। शोधकर्ताओं द्वारा इन परीक्षणें का भरपूर प्रयोग किया जाता है।

वाइनर (1991)भी सहमत है कि औद्योगिक विकास और नगरीकरण को गति यूरोप और उत्तरी अमेरिका में अनिवार्य जन शिक्षा के प्रसार का एक महत्वपूर्ण कारण रहीं है, लेकिन कभी–कभी वह शिक्षा इन विकास क्रमों से पहले भी आई है। वे एक संस्था के रूप में विद्यालय में ऐसे सकारात्मक गुण देखते हैं जो ''राजनीतिक मतामतों'' के फलस्वरूप पैदा हुए।

आडवानी (1992)ने बताया कि नेत्रहीन बालकों के लिए विशिष्ट विद्यालय बहुत ही सीमित है तथा उन्हें दी जाने वाली सेवाएं भी पर्याप्त नहीं है।

लाली, एस. (1995)ने सामान्य विद्यालय में अध्ययनरत् दृष्टिहीन विद्यार्थियों के बारे में सामान्य विद्यार्थियों के साथ तुलनात्मक अध्ययन करके उनकों (दृष्टिहीन विद्यार्थी) होने वाली विभिन्न प्रकार की समस्याओं को जानने का प्रयास किया। यह शोध केरल राज्य के माध्यमिक स्तर के सामान्य विद्यालयों को लेकर किया गया।

मिटलर (1995)ने समावेश की दो व्यापक परिभाषाएं दी हैं – पहले का संबंधी सभी बच्चों की आवश्यकताएं पूरी करने के लिए मूलगामी विद्यालय–सुधार मौजूदा व्यवस्था में परिवर्तन तथा विद्यालय की पूरी पाठ्यचर्चा पर पुनर्विचार से है। दूसरी परिभाषा शिक्षा को पड़ोस के एक विद्यालय में एक आम कक्षा तक सीमित कर देती है जिसमें छात्र सामान्यतः जाएगा और उसमें विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खुद की देखभाल और संवाद की उन कुशलताओं के अध्यापन के रूप में

अतिरिक्त विलंब और अतिरिक्त ध्यान दिया जाएगा जिन्हे आम कक्षाओं में आसानी से पढ़ाया नहीं जाता।

कमलम (1996)ने त्रिची जनपद के त्रिवेरमबूर ब्लाक (ग्रामीण क्षेत्र) के प्राथमिक विद्यालय में अध्ययन किया। उन्होंने मंद बुद्धि बालकों को पढ़ाने वाले शिक्षकों की कार्य क्षमता निर्माण पर अध्ययन किया। शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया और इसके पश्चात यह निष्कर्ष निकला कि प्राथमिक विद्यालय के शिक्षको की मंद बुद्धि बालकों के विषय में काफी जानकारी बढी है।

पुनानी (1996)ने निष्कर्ष निकाला कि समेकित शिक्षा नेत्रहीन बालकों मे सामाजिक युग्मन और सामाजिक स्वीकृति को बढ़ाती है। समेकित शिक्षा अभिभावकों, शिक्षकों और प्रबंध समिति के सहयोग के बिना सफल नहीं हो सकती। साधारणतया नेत्रहीन बालकों की यही सोच होती है कि उनके बालकों को भी समाज में उचित स्थान मिले और इसके लिऐ समेकित विद्यालयों की परम आवश्यकता है। समेकित शिक्षा अभिभावकों में अपने बालकों के प्रति जिम्मेदारी की भावना को बढाती है न कि संस्थानों का रूप बदलने की।

सेबा और एंस्कोव (1996)ने एक दिलचस्प अनुभव बयान किया है जिसमें इस विषय पर कुछ अनुसंधान कराने के बार में उनके आग्रह पर उत्तर में विद्यालयों ने समावेशी शिक्षा की अनेक प्रकार से व्याख्या की। अपने अनुसंधान के इरादे का संकेत देने के लिए उन्होने विद्यालयों को एक 'कार्यकारी परिभाषा' से इन शब्दों में समावेशी विद्यालय परिचित करायाः एक समावेशी विद्यालय इस सिद्धांत पर काम करता है कि समुदाय के सभी छात्रों को एक साथ पढ़ाई करनी चाहिए।' विद्यालयों के एक बड़े दायरे ने इसका जवाब दिया, उनमें विकलांग बच्चों के लिए विशेष इकाइयों वाले विद्यालय भी थे और विशेष विद्यालयों से संबंध रखने वाले विद्यालय भी। ऐसी एक परिभाषा में एंस्कोव ने एक और समस्या दिखाई है जिसमे 'समावेश' को एक स्थिर धारणा माना जाता है जिसके अनुसार कोई विद्यालय या तो समावेशी है या नहीं है। ऐसी स्थिति और भी पेचीदगियां पैदा करेगी क्योंकि इस बारे में

सहमति का अभाव है कि एक समावेशी विद्यालय या कक्षा को कैसा नजर आना चाहिए।

सेबा और एंस्कोव (1996)समावेश की निम्नलिखित परिभाषा पर पहुंचे – समावेश उस प्रक्रिया का वर्णन करता हे जिसके द्वारा एक विद्यालय अपनी पाठ्यचर्चा के गठन और प्रावधान पर पुनर्विचार करके सभी छात्रों को व्यक्ति मानकर उनके प्रत्युत्तर देने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया के द्वारा विद्यालय स्थानीय समुदाय का उन सभी छात्रों को स्वीकार करने के लिए अपनी क्षमता का विकास करता है जो विद्यालय आना चाहते हैं, और इस प्रकार छात्रों को बाहर रखने की आवश्यकता घटाता है।

बूथ (1996)शिक्षा में समावेश को एक स्थिति मानने की बजाय एक अन्तहीन प्रक्रियाओं का सिलसिला मानते हैं। समावेश की बहुत सी दूसरी शाखाएं–उपशाखाएं भी है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से 'बहिराव' एक्सक्लूजन का उलटा है। कोई विद्यालय अगर अपनी सांगठनिक, सांस्कृतिक या पाठ्यचर्चात्मक सीमाओं के कारण पूरी–पूरी भागीदारी से बच्चों को, या तो उनकी विकलांगिताओं के कारण या उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अभावों के कारण, बाहर रखता है तो उसे समावेशी नहीं कहा जा सकता। समावेश ओर बहिराव की प्रक्रिया परस्पर संबंधित है।

ब्लाचो (1997)की राय में इस शब्द की समुचित परिभाषा नहीं की। उसकी 'अस्पष्टता' और 'बहु–अर्थीपन' के कारण उसकी ऐसी परिभाषा और व्याख्या की गई कि वे लोग भी इसके दायरे में आगए जो किसी गुण की हानि का शिकार नहीं है, और इस अधिगम के सामाजिक संदर्भ को छानबीन कम की जाने लगी। इसलिए निर्धनता में जी रहे और फलस्वरूप सार्थक शैक्षिक अल्प–उपलब्धि के जोखिम से दो–चार बच्चे इस शब्द में शामिल नहीं हो सकते।

विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं वाले बच्चो की पहचान ठप्पा लगान और भेदभाव करने' वाले का साधन बन गई है।

उमा देवी (1997)ने सुधारात्मक कार्य की फल साधना पर अध्ययन किया जो कि कक्षा 4 के अंग्रेजी माध्यम विद्यालय के डिसलेक्सिक बालकों के वाचन कौशल को सुधारने के लिए था।

यह विद्यालय देवानगिरी शहर में था। इस अध्ययन कार्यक्रम का बहुत ही सकारात्मक परिणाम मिला जिससे बालक के वाचन कौशल में सुधार हुआ।

गीता, टी. (1998)ने डिसलेक्सिक बालक के लिए एक सुधारात्मक कार्यक्रम बनाया जो कि शिक्षकों के कौशलों में प्रभावशीलता को बढ़ाकर लागू किया गया था। कक्षा एक से पांच तक के ऐसे बालकों को इस अध्ययन में शामिल किया गया। यह शोध शिक्षकों के लिए लाभकारी सिद्ध हुआ।

मार्ली (1998)बुनियादी सवाल उठाया है कि क्या (विद्यालय प्रभाविता संबंधी) संवाद विकासशील देशों के लिए प्रासंगिक है। मिसाल के लिए समता भारत में आज भी चिंता का एक प्रमुख विषय है जबकि बच्चों और खासकर अभावग्रस्त और विकलांग बच्चों का एक बड़ा भाग आज भी विद्यालय से बाहर है।

स्वरूप एवम आहुजा (1998)ने अपनी गलतियों का स्वयं निरीक्षण या विश्लेषण तथा स्वःनियंत्रण पर परीक्षण के असर का अध्ययन किया। जिससे की चिन्तन क्षमता में सुधार हो। मुम्बई के दो साधारण विद्यालयों के कक्षा 4 व 5 के बालकों को इसमें लिया गया।

वर्मा पी. (1998)ने अपनी पी.एच.डी. के शोध के लिए अधिगम असमर्थता वाले तथा सामान्य बालकों की संज्ञानात्मक तथा प्रेरणात्मक विशेषताओं पर अध्ययन किया। परिणामों के अनुसार दानों के मध्य महत्वपूर्ण अंतर पाया गया, जो शब्द ज्ञान, देखने व सुनने के अंतर तथा विशेष ध्यान पर आधारित थे।

लुंट और नार्विच (1999)के अध्ययन के अनुसार ब्रिटेन की लीग टेविल्स में ऊँचे स्थान वाले विद्यालयों में औसतन केवल 8प्रतिशत छात्रों की ही शैक्षणिक विशेष आवश्यकतायें हैं जबकि निम्न स्थान वाले विद्यालयों में ऐसे छात्रों का औसत 33

प्रतिशत है। विद्यालय प्रभाविता की यह परिभाषा विद्यालयों की रागता संबंधी जिम्मेदारियों तथा छात्रों में विकसित किए जाने वाले जीवन मूल्यों पर काई ध्यान नहीं देती।

स्वरूप (1999)ने अतिसंज्ञानात्मक व्यूह परीक्षण कार्यक्रम बनाया। यह उन बालकों के लिए था जो मुख्यधारा वाले विद्यालयों में अधिगम असर्मथता का शिकार थें। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य था कि ऐसे बालकों में प्रभावी धारणा, स्मरण शक्ति तथा प्रत्यास्मरण क्षमता बढ़े। जिससे उनकी सोचने की क्षमता और समस्या समाधान कौशल विकसित हो।

जावेरी (2001)ने सामान्य विद्यालय के प्रबंधकों व शिक्षकों की समावेशी शिक्षा के प्रति जागरूकता पर अध्ययन किया और एक मॉड्यूल तैयार किया। जारूकता फैलाने के लिए अनेक उपागमों का प्रयोग किया गया। इनका प्रतिफल संतोषजनक सिद्ध हुआ।

स्वरूप एवं चौपड़ा (2002)ने बालकों के आदर्श व्यवहार की पहचान में 'अति सक्रिय व्यवस्था में ध्यान की कमी' पर अध्ययन किया, जो कि मुख्य धारा कक्षा में किया गया था। न्यादर्श 5–7 वर्ष की आयु के कक्षा 8 वीं तक के अर्द्ध सरकारी अंग्रेजी माध्यम के विद्यालय के 1920 बालकों का था। इसमें से उन्होने मुख्य 34 अंतिम न्यादर्श लिए और उसमें से भी सिर्फ 8 केस स्टडी के लिए चुने। शोध–कर्ताओं ने अभिभावको तथा शिक्षकों के साक्षात्कार लिए। इन्होने शिक्षकों तथा अभिभावकों का निरीक्षण, ज्ञान, विद्यालय का परिवेश, घर का वातावरण और शिक्षकों तथा अभिभावकों का बालकों पर ध्यान, को ध्यान में रखते हुए किया। शिक्षकों तथा अभिभावकों के लिए अलग–अलग परीक्षण की व्यवस्था की गई थी और वह भी अकेले अकेले जिसमें लगभग 30–45 मिनट लगते थे। यह कार्यक्रम दो सप्ताह तक किया गया। शिक्षकों और अभिभावकों की दर व्यवहारिक रूप कई हद तक समान थी। परंतु पहचाने हुए व्यवहार की गति में जो समस्यायें थी, जैसे अतिसक्रियता, आवेग, सामाजिक बेढंगेपन, अति लोलुप व्यवहार का अध्ययन कर उन्हे सुधारात्मक योजना प्रदान की।

एंस्कोव (2005)ने शैक्षिक कठिनाइयों की समझ के आधार पर समावेशी शिक्षा संबंधी विभिन्न परिप्रेक्ष्यों की व्याख्या की है। पहला, एक बच्चें के सामने आने वाली शैक्षिक कठिनाइयों के लिए खुद बच्चें में मौजूद विकलांगिताओं को जिम्मेदार कहा जा सकता है। दूसरे, उसे एक बच्चे की विशेषताओं तथा विद्यालय मे मौजूद सांगठनिक और पाठ्यचर्चात्मक बंदोबस्तों के बीच असंगति का परिणाम ठहराया जा सकता है। तीसरे पाठ्यचर्चा की सीमाएं भी इन कठिनाइयों के कारण हो सकती है – यहां पाठ्यचर्चा का एक व्यापकतर अर्थ लिया गया है। जिसमें विद्यालय द्वारा प्रदान किए जाने वाले सभी नियोजित और अनियोजित अनुभव शामिल है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा –(2005)में भी समावेशी शिक्षा पर बल देते हुये बताया गया है कि स्कूलों को ऐसे केन्द्र बनाये जाने की जरूरत है जहाँ मानसिक अथवा शारीरिक रूप से असमर्थ बच्चों को समाज के हाशिए पर जीने वाले बच्चों और कठिन परिस्थिति में जीने वाले बच्चों को शिक्षा के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र के सबसे ज्यादा फायदे मिले। अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने के मौके और सहपाठियों के साथ बटने के मौके देना बच्चों में प्रोत्साहन और जुडाव को पोषण देने के शक्तिशाली तरीके हैं।

पार्सन्स (2005)के अनुसार विकसित और विकासशील देशों में प्रभावी विद्यालयों और प्रभावी विद्यालय–शिक्षा पर बहुत सी बातें हुई है, पर 'किसके लिए प्रभावी विद्यालय' पर बहस कम ही हुई है। सामान्यतः प्रभावी विद्यालय वें है जो अच्छे अकादमिक परिणाम देते हैं मान्यता यह रहती है कि ''छात्रों ने सीख लिया है।'' वे कहते है–

जरूरी नहीं कि ऐसे प्रभावी विद्यालय 'बहुत अच्छे' विद्यालय हो, हो सकता है एक बहुत अच्छा विद्यालय हो जो अपने ग्राहक बनाएं रखता है तथा उनकी आवश्यकताएं चाहे जितनी भी कष्टसाध्य हो, उन्हें पूरा करने की जिम्मेदारी कायम रखता है।

लायड (2006)ने अनपने अध्ययन में कहा कि हमने अपनी बात का आरंभ इस परिकल्पना के साथ किया था कि शिक्षा और विद्यालय को पर्याय माना जाता है, मगर वे पर्याय है नहीं। यह बात भी कही जाती रही है कि आज के विद्यालयों की रूपरेखा ऐसी है कि वे शिक्षा प्रदान कर सकने में असमर्थ है, खासकर उन्हें जिनका संबंध अभावग्रस्त पृष्ठभूमियों से है और जो विकलांग है।

मिटलर (2006)ने कुछ विशेष श्रेणी की मानसिक नियोग्यताओं से ग्रस्त बच्चों की शिक्षा को लेकर एक उल्लेखनीय टिप्पणी की है। वे वाक्–विकार (डिस्लेक्सिया), स्वपरायणता (आटिज्म) और ध्यान में कमी की कठिनाई जैसी विकलांगिताओं के बारे में कहते हैंः यह साबित करने के लिए कम ही साक्ष्य हैं कि इन या इनसे मिलती–जुलती दशाओं का सटीक निदान ताजगी तौर पर संलक्षण विशिष्ट (सिंड्रोम स्पेसिफिक) प्रकार के शैक्षिक हस्तक्षेपों की मांग करेगा। ऐसे सभी बच्चों के लिए अधिगम के अपने अपने ढर्रो को ध्यान में रखते हुए अच्छे अध्यापन की आवश्यकता है।

बूथ (2008)'विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं की शब्दावली की जगह 'अधिगम और भागीदारी की बाधाऐं' के प्रयोग को प्राथमिकता देते हैं और उनका कथन है कि दक्षिण अफ्रीका में कानून के ढांचे के लिए तथा यूनेस्कों की 1998 की दस्तावेज में इस शब्दावली को थोड़ा बदलकर स्वीकार किया गया है।

स्वरूप, स्मृति (2006)ने अपने शोध पत्र में समावेशी शिक्षा के विभिन्न आयामों की सामाजिक, शारीरिक तथा संवेज्ञानात्मक अभिवृत्तियों के आधार पर विवेचना की है। इस शोध पत्र में उन्होंने स्पष्ट किया है कि प्रति मनोभावों को बदलने की जरूरत है। उनके साथ समुचित संवाद स्थापित करने की जरूरत है। इस शोध पत्र में उन्होंने बताया है कि विशेष योग्यजनों का अधिकाधिक सांस्कृतिक, सामाजिक व मानसिक समावेशन के लिए उनके प्रत्येक पहलुओं का विवेचनात्मक अध्ययन जरूरी है।

रवि, शंकर (2010)ने समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति को जानने का प्रयास किया है। जिसमें प्रशिक्षण की अहम भूमिका रही है। इस लघुशोध प्रबन्ध में उसने महिला शिक्षकों तथा पुरूष शिक्षकों के मध्य समावेशी शिक्षा के प्रति समान सोच–विचार पाया। हांलाकि समावेशी शिक्षा प्रणाली के लिए बनने वाली कानूनी प्रक्रिया या नीतियों में लिंग के आधार पर अन्तर पाया है। इस शोध प्रबन्ध में नीति निर्माताओं के मनोवैज्ञानिक अन्तःदशा को समझने का प्रयास किया गया है।

विश्वास (2010)ने अपने लघु शोध में शिक्षकों व अभिभावकों का समावेशी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण को जानने का प्रयास किया गया है। जिसमें उत्तर प्रदेश के जनपद सहारनपुर, मेरठ और गाजियाबाद के शिक्षकों व अभिभावकों का समावेशी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन किया गया है। इस शोध प्रणाली में सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया है जिसमें अभिभावकों से व्यक्तिगत रूप से संपर्क कर प्रश्नावली भरवाई गई। इस शोध में समावेशी शिक्षा के लिए विद्यालय, परिवार और समुदाय को भी अपनी–अपनी जिम्मेदारी निभाना चाहिए। इस प्रकार के कार्य में पंचायत स्तर पर भी जागरूकता उत्पन्न कर सकते हैं।

आस्था, शर्मा, एवं, भार्गव, एस. (2011) ने अपने शोध पत्र में हरियाणा राज्य के कुरूक्षेत्र जिले में सेवारत प्राथमिक अध्यापकों का समावेशी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोणके अन्तर्गत यह पाया कि समावेशीशिक्षा प्रणाली में सकारात्मक अभिवृत्तियों की विपुल जरूरत है। इस शोध पत्रमें 108 प्राथमिक अध्यापकों को रेण्डम न्यादर्श द्वारा शामिल किया गया जिसमें शर्मा व देसाई (2002) के द्वारा प्रदत्त पैमाने के अनुसार अध्यापकों की अभिवृत्तियोंको समावेशी शिक्षा विकास के माध्यम से जाना गया। इस प्रणाली में कुछ विशेष अध्यापक भी शामिल किये गये।

समावेशी शिक्षा के प्रति महिला अध्यापकों (70.22 प्रतिशत) की तुलना में पुरूषअध्यापकों (82.77 प्रतिशत) की अधिक सहमति रही।

तोमर, विवेक (2011),ने समावेशी शिक्षा में प्रशिक्षित तथा अप्रशिक्षित सामान्यशिक्षकों की शिक्षण विधियोंमें सार्थक अन्तर बताया है उन्होंने अपने लघु शोध

में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986)में समानता के लिए शिक्षा नामक अध्याय में विकलांग बच्चों और सामान्य बच्चों की शिक्षा के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया है। इन्होंने अपने शोध में सर्वेक्षण विधिका प्रयोग करते हुए उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के शिक्षकों तथा विद्यार्थियों का समावेशीत शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का अध्ययन कियाहै। इन्होंने शोधमें कुल 58 शिक्षकों को शामिल किया है जिसमें से 29 समावेशी शिक्षा मेंप्रशिक्षित सामान्य शिक्षक एवं 29समावेशित शिक्षा में अप्रशिक्षित सामान्य शिक्षक है।इस तरहशोध कार्य में 58 विद्यार्थी शामिल किये जिसमेंसामान्य विद्यालयके सामान्य 29 विद्यार्थी और सामान्य विद्यालय में विशेष आवश्यकता वाले 29 विद्यार्थीशामिल किये गये। उन्होंने स्वनिर्मित लिकर्ट अभिवृत्तिमापनी का प्रयोग किया है। तथा अपने शोध के निष्कर्षमें पाया कि अधिगम असर्मथता वाले तथा सामान्य बालकोंकी अधिगम असमर्थता वाले विद्यार्थियों में अंतर होता है। उन्होंने विद्यार्थियों में स्मरण शक्ति तथा प्रत्यास्मरण क्षमता बढ़ाने के सुझाव भी दिये हैं।

भगेल, ललिता (2013)ने अपने लघु शोध–पत्र में उत्तर प्रदेश राज्य के अलीगढ़ जिले के 40 अध्यापकों को चुना है,जिनका उसने यादृच्छिक विधि द्वारा चयन किया। इनमें से कुछ ग्रामीण क्षेत्रों तथा कुछ शहरी क्षेत्रों तथा कुछ सरकारी तथा कुछ निजी विद्यालयों से थे। उन सभी शिक्षकों में अपनी पूर्ण प्रशिक्षण (समावेशी शिक्षा के प्रति) तथा अप्रशिक्षण के आधार पर सोच, विचार तथा अभिवृत्तियों को बताया है। प्रशिक्षित अध्यापक प्रभावी क्रियान्वयन को सही तथा सकारात्मक ढंग से कर पाने में अधिक सफल तथा रूचिपूर्ण थे। प्रशिक्षित शिक्षकों में परिवार, समाज, साथियों के बारे में भी गहरी समझ थी। लघु शोध पत्र में (समयानुकुल सोच परिवर्तन) निष्कर्ष निकला की सही भवन संरचना भी एक महत्वपूर्ण बिन्दु होता है।

छैल बिहारी (2013)ने प्रारम्भिक स्तर पर समावेशी शिक्षा के प्रति शिक्षकों के विभिन्न दृष्टिकोणों का अध्ययन करते हुये समावेशी शिक्षा में प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित शिक्षकों की अभिवृत्ति का तुलनात्मक शोध किया है। इन्होंने अपने शोध कार्य में राजस्थान राज्य के जयपुर जिले के शिक्षकों का चयन यादृच्छिक विधि से

किया है। जिसमें कुल 40 शिक्षकों पर शोध किया गया इनमें से 20 समावेशी शिक्षा में प्रशिक्षित अध्यापकों की तुलना में समावेशी शिक्षा में अप्रशिक्षित अध्यापकों के दृष्टिकोण में समावेशी माहौल के प्रति नकारात्मक पक्ष पाया।

गुर्जर, मोनू सिंह (2014)ने उच्च प्राथमिक स्तर पर सामान्य विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों एवं अध्यापकों (क्षेत्र विशेष–दौसा जिले के बाँदीकुई तहसील) का स्वनिर्मित अभिवृत्तिमापनी द्वारा समावेशीशिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया। इस लघु शोध में कुल 30 विद्यालयों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया, जिसमें 15 ग्रामीण एवं 15 शहरी विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों तथा 60 शहरीएवं 60 ग्रामीण विद्यालयों के शिक्षकों को सम्मिलित करते हुए उनके सकारात्मक व नकारात्मक दृष्टिकोणों को प्रतिशत मान के आधार पर परखा गया। उपर्युक्त लघु शोध द्वारा प्रधानाध्यापकों का विश्लेषणात्मक निष्कर्ष सामने आया कि समावेशी शिक्षा के प्रति ग्रामीण प्रधानाध्यापकों का अभिमत शहरी विद्यालयों के प्रधानाध्यापकों की तुलना में अधिक सकारात्मक रहा।ग्रामीण क्षेत्र में निजीविद्यालयों में कार्यरत महिला प्रधानाध्यापकोंकी अपेक्षा पुरूष प्रधानाध्यापकों का दृष्टिकोण अधिक सकारात्मक पाया गया। इसी आधार पर अध्यापकों के समावेशीशिक्षा के प्रति दृष्टिकोण को भी स्वनिर्मित अभिवृत्ति मापनी द्वारा जांचा गया जिसमें शहरी क्षेत्र के अध्यापकों की बजायग्रामीण क्षेत्र के अध्यापकों का दृष्टिकोण कही अधिक सकारात्मक पाया गया विशेष कर निजी विद्यालयों के अध्यापकों का।

कठेरिया, अश्वनी कुमार (2015)ने अपने लघु शोध में समावेशी शिक्षा के प्रति प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित अध्यापकों के दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इन्होंने अपने लघुशोधमें उत्तर प्रदेश राज्य के औरैया लखनऊ और कानपुर के 48 शहरीअध्यापकों का यादृच्छिक विधि द्वारा चयन किया। इस लघु शोध से ज्ञात होता है कि समस्त सरकारी, अर्द्ध सरकारी व निजी सैद्धान्तिक प्रयासों के बावजूदसरकारीविद्यालयों के समावेशी शिक्षा में अप्रशिक्षित अध्यापकों के दृष्टिकोण में आशानुरूप परिवर्तन नहीं हुआ है।

लिमये, संध्या (2016)ने अपने शोधपत्र में विकलांगजनों को सशक्त बनाने के लिए, उपेक्षा, अभाव, अलगाव तथा सामाजिक बहिष्कार जैसी बाधाओंको दूर करनेके बारे में लिखा है। उन्होंने यह बताया कि अब समय आ गया है कि निर्भरता और निम्न आशा की संस्कृति का अंत हो औरएक ऐसे समाज की ओर कदम बढाया जाये, जिसमें हम विकलांग लोगों के लिए सहयोगपूर्ण नजरिया रखें, उन्हें भागीदार और समावेशी बनाने के लिएउनको सशक्त करें और समर्थन दे। शोधार्थी ने विभिन्न प्रकारकी विकलांगता, उनकी जरूरतों,उनकी क्षमताओं के बारे में विभिन्नहितधारकोंके लिए जागरूक कार्यक्रमों पर बल दिया है।

6.0 Research gaps identified in the proposed field of investigation (Based on the review).

पूर्व शोध कार्यएवं वर्तमान प्रस्तुत शोध कार्य में अन्तर –

समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित पूर्व में सम्पन्न हुए शोध कार्य तथा शोध लेखों की गहन समीक्षा से स्पष्ट होता है कि पूर्व में कई महत्वपूर्ण अनुसंधानों का उद्देश्य इस क्षेत्र के लिए उपकरणों (Tools)का निर्माण करना अथवा प्रशिक्षण हेतु मॉड्यूल (Trainging Moduls) निर्माण रहा है। इसके अतिरिक्त अधिकांश अनुसंधानों में विशेष शिक्षा (Special Eduction) में प्रशिक्षित अध्यापकों की अप्रशिक्षित अध्यापकों से तुलना करना रहा है या दिव्यांग विद्यार्थी जैसे दृष्टि बाधित या आंशिक दृष्टि बाधित (Parially Impaired) की तुला सामान्य विद्यार्थियों से कुछ मनो–सामाजिक कारकों पर करना रहा है। कुछ शोध कार्यों में प्राथमिक शिक्षा स्तर पर हैडमास्टर, शिक्षकगण अथवा अभिभावकगणेां की समय की शिक्षा या समावेशी शिक्षा के प्रति जागरुकता (Awareness) या दृष्टिकोण को ज्ञात करना रहा है।

माध्यमिक शिक्षा स्तर सम्पूर्ण शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सोपान है। इस स्तर पर विद्यार्थी किशोर अवस्था में होता है तथा उसमें महत्वपूर्ण शारीरिक, मानसिक व सवेंगात्मक परिवर्तन लक्षित होते हैं। यह स्तर आगे की पढ़ाई व कैरियर के लिए भी महत्वपूर्ण है तथा अनेकों के लिए जीवन क्षेत्र में व्यवसाय/रोजगार के लिए प्रवेश करने का समय है। इस माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी चाहे वह सामान्य हो या किसी शारीरिक/मानसिक कमी से ग्रस्त (दिव्यांग) विद्यार्थियों, से सम्बन्धित तीन प्रमुख घटक उत्तरदायी हैं – संस्था प्रधान (प्रबन्धक), शिक्षक व अभिभावक।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में इस कमी को दृष्टिगत रखते हुए माध्यमिक स्तर पर संस्था प्रधानों (प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिकाएं), अध्यापक (पुरुष/महिला) तथा अभिभावकों की समावेशी शिक्षा को आगे बढ़ाने में आने वाली कठिनाइयां केलिए किए गये प्रयास व उन सभी की समावेशी शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन करना है। आशा है यह शोध कार्य इस कमी की पूर्ति में अपना आंशिक सहयोग प्रदान करेगा। यह इस दिशा में किया गया एक लघु प्रयास है।

7.0 Major Hypothesis, if any.

शोध परिकल्पनाएँ –

प्रस्तुत शोध कार्य में अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु,निम्नलिखित परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया है–

1. समावेशी शिक्षा के विकास में संस्था प्रधानों(प्रधानाध्यापक / प्रधानाध्यापिकाएं) की भूमिकातथा उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण है।
2. समावेशी शिक्षा हेतु संस्था प्रधानों(प्रधानाध्यापक / प्रधानाध्यापिकाएं) के प्रयास सन्तोषजनक है।
3. समावेशी शिक्षा के प्रति सरकारी विद्यालय एवं निजी विद्यालयों के संस्था प्रधानों की अभिवृत्ति में सार्थक अन्तर है।
4. समावेशी शिक्षा के प्रति बालक विद्यालयों के अध्यापक एवं बालिका विद्यालयों की अध्यापिकाओं की अभिवृत्ति में सार्थक अंतर है।
5. समावेशी शिक्षा के प्रति बालक विद्यालयों के अभिभावक व बालिका विद्यालयों के अभिभावकों की अभिवृति में सार्थक अंतर है।

8.0 Reserch Methodology

शोध प्रक्रिया –

8.1 शोध विधि

प्रस्तावित शोध अध्ययन के लिऐ सर्वेक्षण विधि का चयन किया जायेगा। किसी भी शोध प्रबन्ध को प्रस्तुत करने की एक निश्चित अवधि होती है उससे बाहर नहीं जाया जा सकता है इसी कारण शोध कार्य के प्रारम्भ में गहन अध्ययन एंव मनन के पश्चात् शैक्षिक अनुसंधान की विधियों में से सर्वेक्षण विधिका चयन किया गया है ताकि निश्चित समय अवधि में कार्य को पूर्ण किया जा सके।

सर्वेक्षण विधि वह प्रणाली है जिसमें अनुसंधानकर्ता नियंत्रित नहीं होता है वरन् स्वतंत्र एवं खुले संसार में विचरण करता है वह लोगों के जीवन एवं क्रियाओं,प्रतिक्रियाओं का स्वच्छंद एवं मुक्त मन से अध्ययन करता है तथा विषयी स्वरुप की क्रियाओं का प्राकृतिक रुपों में बहुआयामी अध्ययन करता है।

8.2 न्यादर्श –

प्रस्तावित शोध कार्य के लिए राजस्थानराज्य के जयपुर संभाग के 80 माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत 320 अध्यापकों (4 अध्यापक प्रति विद्यालय), 80 संस्था प्रधान एवं 320 अभिभावकों का चयन जो SMC/Parent Teacher Associationके सदस्यों (4 अभिभावक प्रति विद्यालय) का चयन यादृच्छिक विधि से किया जायेगा न्यादर्श को पूर्ण प्रतिनिधित्व बनाने के लिए जयपुर संभाग को चुना गया है। न्यादर्श के वितरण को निम्न रेखीक चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

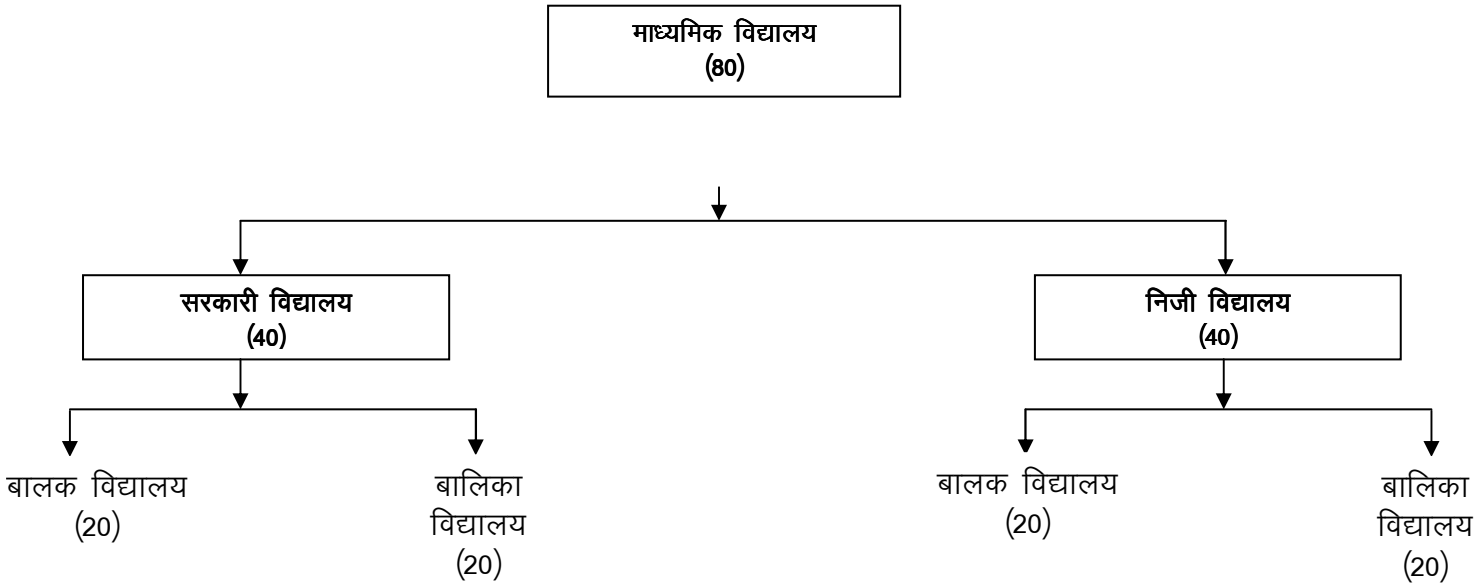

8.3 चर –

चर वह गुण है जिसमें विभिन्न मान हो सकते हैं। यह किसी घटना, क्रिया या प्रक्रिया जिसका अध्ययन किया जा रहा है, को प्रभावित करता है। इस अध्ययन में शोध में निम्न चरोंका उपयोग करना प्रस्तावित है।

1. स्वतंत्र चर –जिस चर का प्रयोगकर्त्ता हेरफेर कर सकता है वह स्वतंत्र चर कहलाता है। इस अध्ययन में निम्न स्वतंत्र चरों का प्रयोग किया गया है –

- संस्था प्रधान (प्रधानाध्यापक/प्रधानाध्यापिकाएं)
- अध्यापक
- अभिभावक

2. आश्रित चर –आश्रित चर वह स्थिति या अभिलक्षण है जो प्रयोगकर्त्ताद्वारा स्वतंत्र चर के प्रवेश हटाने या बदलने से प्रकट होता है, लुप्त होता या बदलता है। इस अध्ययन में आश्रित चर होगा –

- समावेशी शिक्षा

8.4 शोध के उपकरण –

अनुसंधान के लिए समस्या का चयन व परिकल्पनाओंके निर्माण के बाद अनुंसधानकर्ता के सम्मुख उपयुक्त शोध उपकरणों के उपयोग की समस्या होती है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थी द्वारा स्वनिर्मित निम्न उपकरणों का प्रयोग किया जाएगा।

- व्यक्तिगत सूचना प्रपत्र
- साक्षात्कार अनुसूची (संस्था प्रधान/अभिभावक)
- विद्यालय अवलोकन अनुसूची
- अभिवृत्ति मापनी

- **व्यक्तिगत सूचना प्रपत्रः**–इस प्रपत्र में न्यादर्श में सम्मिलित व्यक्तियों का सामान्य परिचय, आयु, शैक्षिक, व व्यावसायिक योग्यताएॅ,आदि पदों की रचना की जाएगी।
- **साक्षात्कार अनुसूची :–** इसअनुसूची में ऐसे प्रश्नों का चयन किया जाएगा जिससे संस्था प्रधानों की समावेशी शिक्षा की आवश्यकता, महत्व व प्रयासों के सन्दर्भ में पदों की रचना की जाएगी।

- **विद्यालय अवलोकन अनुसूची :–**इस अनुसूची के आधार पर शोधार्थी स्वंय विद्यालयों में समावेशी शिक्षा के लिए किए जा रहे प्रयासों का अवलोकन करेगा।
- **अभिवृत्ति मापनी :–**समावेशी शिक्षा के प्रति संस्था प्रधानों, अध्यापकों एवं अभिभावकों हेतु अलग–अलग पांच बिन्दुओं यथा पूर्णतया सहमत, सहमत, अनिर्णित, आंशिक असहमत तथा पूर्णतया असहमत पर आधारित कथनों का विषय विशेषज्ञों की सहायता व मार्गदर्शन में निर्माण किया जाएगा।

8.5 सांख्यिकी विश्लेषण –

प्रदत्तों का फलांकन कर उनकी व्याख्या व निष्कर्ष प्राप्त किये जायेगें। इस हेतु उचित साख्यिंकी विधियों यथा मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, टी–टेस्ट,क्रान्तिक अनुपात, एवं आवश्यक सांख्यिकी का प्रयोग करते हुए प्रदत्तों का विश्लेषण किया जायेगा।

8.6 तकनीकी शब्दों की व्याख्या

अभिवृति

अभिवृति एक ऐसी प्रवृत्ति होती है जिसमें व्यक्ति वातावरण के पहलुओं के प्रति संगत एवं नियमित ढंग से सोचता है तथा अनुक्रियाएँ करता है।

समावेशी शिक्षा

समावेशी शिक्षा से आशय उस शिक्षा व्यवस्था से है जिसके अंतर्गत सामान्य विद्यालय में सामान्य पाठ्यक्रम को, सामान्य व विकलांग (दिव्यांग) विद्यार्थी साथ–साथ अध्ययन करते है।

8.7 शोध कार्य का अध्यायवार विभाजन –

प्रथम अध्याय : सम्प्रत्यात्मक पृष्ठभूमिक (प्रस्तावना, समस्या का औचित्य, समस्या कथन, शोध अध्ययन के उद्देश्य, परिकल्पनाएँ,सम्प्रत्ययों/चरों की व्याख्या, तकनीकी शब्दोंका परिभाषीकरण, शोध अध्ययन की परिसीमाएँ आदि।)

द्वितीय अध्याय : सम्बन्धित साहित्य का पुनरावलोकन (प्रस्तावना, सम्बन्धित साहित्य का अर्थ, सम्बन्धित साहित्य का महत्व, सम्बन्धित साहित्य की सूचनाओं के स्त्रोत, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन, सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा आदि)

तृतीय अध्याय : शोध प्रारूप (प्रस्तावना, शोध विधि, शोधअध्ययन के चर, जनसंख्या, न्यादर्श, प्रदत्तों के स्त्रोत, प्रदत्तों की प्रकृति, शोध उपकरण, शोध प्रक्रिया शोध अध्ययन में प्रयुक्त सांख्यिकी आदि)

चतुर्थ अध्याय : प्रदत्तों प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवं विवेचना।

पंचम अध्याय : शोध निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ एवं सुझाव (शोध के निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ, भावी अनुसंधान हेतु, सुझाव आदि)

षष्ठम् अध्याय : सारांश (प्रस्तावना, समस्या का औचित्य, समस्या कथन, अध्ययन के उद्देश्य, परिकल्पनाएँ, सम्प्रत्ययों की व्याख्या, शोध विधि, अध्ययन चर, जनसंख्या, न्यादर्श, शोध में प्रयुक्त उपकरण, शोध प्रक्रिया, शोध अध्ययन के निष्कर्ष शैक्षिक निहितार्थ भावी अनुसंधान हेतु सुझाव आदि।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

परिशिष्ट :

9.0 List of Refrences Cited.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- कठेरिया, अश्वनी कुमार (2015), ''समावेशी शिक्षा के प्रति प्रशिक्षित और अप्रशिक्षित अध्यापकोंके दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन, एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, म.द.स.वि. अजमेर

- कपिल, एच.के. (2009), अनुसंधान विधियां, आगरा, एच.पी. भार्गव बुक हाउस।

- कौल, लोकेश (2008), शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस।

- गर्ग, सरिता (2005), भारतीय आधुनिक शिक्षा, नई दिल्ली, एनसीईआरटी।

- गुप्ता, एस.एवं अग्रवाल, जे.सी. (2009), शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया एवं विशिष्ट आवश्यकताओं वाले अधिगमकर्ता, नई दिल्ली, शिप्रा पब्लिकेशन।

- गुर्जर, मोनू सिंह (2014), ''समावेशी शिक्षा के प्रति विद्यालयों के दृष्टिकोण का अध्ययन'' एम.एड. लघुशोध प्रबन्ध, म.द.स.वि., अजमेर।

- झा, मदन मोहन (2003),समावेशी शिक्षा, दृष्टिकोण और प्रक्रियाऐं, नई दिल्ली, प्रकाशन संस्थान।

- छैल बिहारी (2013), ''प्रारम्भिक स्तर परसमावेशित शिक्षा के प्रति शिक्षकों के दृष्टिकोणका एक अध्ययन''एम.एड.लघु शोध प्रबन्ध, म.द.स.वि. अजमेर।

- तोमर, विवेक (2011), ''शिक्षकों और विद्यार्थियों का समावेशित शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का एक अध्ययन'' एम.एड. लघुशोध प्रबन्ध म.द.स.वि. अजमेर

- ढोंढयाल, फाटक (1972), अनुसंधान का विधि शास्त्र, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

- विश्वास (2010) ''शिक्षकों व अभिभावकों का समावेशी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण का एक अध्ययन'' एम.एड. लघु शोधप्रबन्ध, म.द.स.वि. अजमेर।

- पांडेय, के.पी. (2008), शैक्षिक अनुसंधान, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन।

- भटनागर, आर.पी. एवं भटनागर, मीनाक्षी (2010), मेरठ, शैक्षिक अनुसंधान, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।

- भगेल, ललिता (2013), ''समावेशी शिक्षा के प्रभावी कार्यान्वयन के प्रति अध्यापकों की अभिवृत्ति का एक अध्ययन'' एम.एड. लघुशोध प्रबन्ध,म.द.स.वि. अजमेर।

- लिमये, संध्या (2016), ''विकलांगजनों का सामाजिक समावेशन : मुद्दे व रणनीतियाँ''योजना, मई 2016पृष्ठ 25–27।
- शर्मा, आर.ए. (2009), विशिष्ट शिक्षा का प्रारूप, मेरठ, सूर्या पब्लिकेशन।
- सिंह, अरूण कुमार (2009), मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
- सिंह, रामपाल व शर्मा, ओ.पी. (2008), शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।
- एन.सी.ई.आर.टी. (2005) राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005, नई दिल्ली, एन. सी.ई.आर.टी.।
- रवि, शशांक (2010) ''समावेशी शिक्षा के विभिन्न मुद्दों के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का एक अध्ययन'' एम.एड. लघु शोध प्रबन्ध, म.द.स.वि. अजमेर।
- Advani, L. (1992), Expanding horizons in the Education of the Visually Handicapped, NASEOH News, Vol. 20(5), 15-16.
- Alur, Mitthu (2005), Education and Children with Special Needs (from Segregation to Inclusion), New Delhi, Sage Publication.
- Alur, Mitthu & Timmons, Vianne (2009), Inclusive Education Across Cultures, New Delhi, Sage Publications.
- Astha, Sharma, (2011) "In Service Primary Teacher's Attitude Towards Inclusion; Survey Results from District Kurukshetra (Haryana)", International Journal of Multidiciplinary Research, Vol. 1, Issue 8, December 2011, ISSN-22315780
- Best, John W. & Kahan, James V. (2008), Research in Education, Delhi Dorling Kindersley (India) Pvt. LTd.
- Geeta, T. (1998) Efficacy of remedial package in augmenting primary school teacher's skill to help dyscalculic children, Ph.D.Edu., Avinashlingam Institute for Home Science and Higher Education for Women, Coimbatore.
- Good C.V. (1954), Dictionary of Education, New York, McGraw Hill Book Co. Ind.
- Guilford, J.P. (1942), Fundamentals of Statistics in Psychology and Education, New York, McGraw Hill Book Co.
- Kamalam, M. (1996), Capacity building of the teachers in educating the mildly mentally retarded primary school children, Ph.D. Edu,

Avinashlingam Institute for Home Science and Higher Education for Women,Coimbatore.

- Lali, S. (1995), A comparative study of the scholastic performance of the visually handicapped pupils studying under the integrated system with that of the normal pupils in secondary schools of Kerala, Ph.D. Education, University of Calicut.

- Mangal, S.K. (2009), Exceptional Children, New Delhi, PHI Learning Pvt. LTd.

- NCERT (1991) ; Fourth Survey of Reseach in Education (1983-88), NCERT, New Delhi, Vol - I & II

- NCERT (2000) ; Fifth Survey of Reseach in Educational Reseach (1988-1992), NCERT New Delhi, Vol. I & II

- NCERT (2006) ; Sixth Survey of Education Research (1993-2000), New Delhi, NCERT. Vol. Ist -IInd

- Punani, Bhushan (1996). Advantages and Limitations of Integrated EducationDisabilites and Impairments, Vol. 10(2), 111-125.

- Puri, Madhumati & George, Abraham (2004), Handbook of Inclusive Education (for Educators, Administrators and Planners), New Delhi, Sage Publications.

- Swarup, S. and Mehta, D.H. (1991), Swarup-Mehta Test of Thinking Strategies (TTS), Centre of Special Education, SNDT Womens University, Mumbai.

- Swarup and Ahuja (1998), Auto analysis of errors and training in self direction to improve quantitative thinking, Journal of Education and Allied Sciences, Vol. 1(2), 1-15.

- Swarup, S. (1999), Metacognition and cognitive strategy training for the children with learning disability, Media and Technology for Human Resource Development (An International Journal of Education and Training Technology), Vol. III (2).

- Swarup, S. and Chapra, S. (2002), Identification and management of typical behaviours of children with attention deficithyperactivity disorder, Journal of Indian education, Vol. XXVII (4), 32.42.

- Umadevi, M.R. (1997), Effectiveness of a Remedial Programme on improving reading comprehension skills among dyslexic children, Ph.D., Edu., Kuvempu University

- Verma, Preeti (1998), cognitive and motivational characteristics of the Learning Disabled and the effect of intervention on it, Ph.D. Special Education, SNDT Women's University, Mumbai.

- Zaveri, L. (2001), Development of an awareness modules on inclusive education for studdents with disabilities for administrators and teachers of general schools. Unpublished M.Ed. Dissertation, Centre of Special Education, SNDT Womens University, Mumbai.

Signature of the Candidate with date

Outline Approved.

Name and Signature of supervisor with date & seal

(Dr. V.P. Agarwal)
Associate Professor (Retd.)
RIE (NCERT) Ajmer
39, Shalimar Bagh Colony,
Ajmer Road, Jaipur-302021
Mob. No. : 9414482986

.....
.....
.....